

क शास्त्र

1. भारतीय संगीत का इतिहास
2. हमारे प्राचीन ग्रंथ
3. हिंदुस्तानी संगीत के पारिभाषिक शब्द
4. प्राचीन एवं आधुनिक गायन शैलियाँ
5. राग वर्गीकरण

© NCERT
not to be republished

1

भारतीय संगीत का इतिहास

1. वैदिक काल से तेरहवीं शताब्दी

भारतीय संगीत के ऐतिहासिक अवलोकन के लिए सर्वप्रथम मानव की उत्पत्ति और इस सृष्टि में व्याप्त उन तत्वों पर ध्यान देना होगा जिनके कारण यह सृष्टि गतिमान है, जैसे— ध्वनि, स्वर, लय आदि। मानव को ध्वनि एवं लय का एहसास सर्वप्रथम दिल की धड़कन सुनकर एवं इसके पश्चात पत्तों की सरसराहट, मेघों की गर्जना, वर्षा की बूंदों की टिप-टिप, झरनों से गिरते पानी का निनाद, पक्षियों के कलरव, पशु-पक्षियों की आवाज़ आदि से हुआ होगा। मानव ने विभिन्न कालखंडों में अपनी सभ्यता, संस्कृति भाँति-भाँति की कलाओं, विज्ञान एवं तकनीक में अपने विकास क्रम को बनाए रखा। संगीत भी अपनी प्रारंभिक अवस्था से उत्तरोत्तर विकास पथ पर अग्रसर रहा। भारतीय संगीत के इतिहास का अध्ययन हम तीन काल खंडों में कर सकते हैं—

(1) प्राचीन युग— वैदिक काल से प्रारंभ होकर 1200 ई. तक, (2) मध्य युग— 1201 से सन 1800 ई. तक तथा (3) आधुनिक युग— सन 1801 से वर्तमान समय तक चल रहा है। भारतीय सभ्यता में प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ 'वेद' हैं जिनमें हमें लगभग सभी विधाओं, शिक्षा एवं कर्मकाण्ड का स्रोत प्राप्त होता है। वेदों का रचनाकाल इतिहासकार ईसा पूर्व लगभग 500 वर्ष अनुमान लगाते हैं।

वैदिक काल में भारत-भूमि पर प्रचलित संगीत का स्तर विश्व के अन्य किसी भी भूखंड के संगीत से श्रेष्ठ माना गया है। वेदों की संख्या चार है— ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद। ऋग्वेद को मुख्य वेद माना गया है। 'ऋक्' अर्थात् स्तुति मंत्र। अतः ऋग्वेद में देवों की स्तुति एवं प्रशंसात्मक ऋचाओं का संग्रह है। इन ऋचाओं की विशेषता यह है कि ये छन्द में बंधी हैं। ऋग्वेद के अंतर्गत 'गीत' के लिए गीति, गाथा, साम, गीर, गात तथा गायत्र आदि नामों का उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद काल में विभिन्न वाद्यों का भी प्रयोग किया जाता था। तत् वाद्यों में 'वाण' (शत तंत्री युक्त), कर्करि, क्षौणी, गर्गर आदि अवनद्ध वाद्य यथा भूमि दुंदुभि, दुंदुभि तथा सुषिर वाद्य जैसे 'नाड़ी' इत्यादि का प्रयोग उस काल में किया जाता था।

यजुर्वेद में मुख्यतः उन्हीं मंत्रों को संकलित किया गया है जो कि यज्ञ-याग आदि के अवसर पर प्रयोग में लाए जाते थे। अध्वर्यु नामक ऋत्विज यज्ञ कार्य का संपादन किया करते थे। यजु को अत्यंत धीमी आवाज़ में उच्चारित किया जाता था।



हम वर्तमान में देखते हैं कि पूजा-पावन इत्यादि में पुरोहित या पंडित, गेरूआ या सफेद स्वच्छ वस्त्र धारण कर मंत्र पढ़ते हैं। कुछ नियमानुसार ईश्वर की आराधना करते हैं। यह प्रथा वैदिक काल से प्रचलित है। आइए, आगे पढ़ते हैं।

यजुर्वेद के मंत्रों की अक्षर संख्या नियत नहीं थी तथा ये गद्यात्मक हुआ करते थे। इन्हीं सामों को यजुर्वेद में ऋतु विशेष से संबंधित बताया गया है, उदाहरणार्थ— रथन्तर साम वसंत में, वृहत्साम ग्रीष्म में, वैरूप वर्षा ऋतु में, रैवत तथा शाक्वर को हेमंत ऋतु में गाया जाता था। (आज के समय में भी राग वसंत, बहार आदि वसंत ऋतु में तथा राग मेघ तथा मल्हार के प्रकार वर्षा ऋतु में गाए व बजाए जाते हैं।) सर्वप्रथम, ‘वीणा’ शब्द का प्रयोग यजुर्वेद में ही प्राप्त होता है। यजुर्वेद में भूमि दुंदुभि, दुंदुभि, आडम्बर आदि अवनद्ध वाद्य, शंख तथा तूणव नामक फूँककर बजाए जाने वाले सुषिर वाद्य एवं पाणिघ्न (हाथ का प्रयोग कर ताल देने वाला) और ‘तलव’ (मंजीरा बजाने वाला) आदि वाद्यों का वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में मंगलदायक सुखकारी मंत्रों के लिए अथर्व संज्ञा का प्रयोग किया गया है। कल्याणकारी मंत्र संग्रह के साथ-साथ इसमें तांत्रिक मंत्र भी हैं। अथर्व में गाथा, रैभी तथा नाराशंसी आदि लोक-लौकिक गीत के प्रकारों का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त मरूद्गणों के समूह गान का कथन भी है। अथर्व में ‘कर्करी’ तथा ‘आघाट’ वाद्यों की ध्वनि का निनाद उल्लिखित है। इसके अतिरिक्त लकड़ी से बनी दुंदुभि का मुख हिरण के चर्म से मढ़ा होना, दुंदुभि के घोष से शत्रुदल के हृदय बिदीर्ण हो जाने का संकेत तथा वाद्यों की ध्वनियों से वीरों का हृदय बल तथा पौरुष से भर उठने का भी संदर्भ है।

सामवेद में संगीत — भारतीय संगीत का मूल आधार होने से सामवेद को संगीत का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। चारों वेदों में से सामवेद संगीत की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण वेद है। ऋग्वेद में गाए मंत्रों को सामवेद में संग्रहित किया गया है। स्वर ही साम का मुख्य अंग है—

साम्नों गतिरिति। स्वर इति होवाच।

सामवेद में ऋक की जितनी ऋचाएँ हैं वे ‘आर्चिक’ कहलाती हैं तथा दूसरा भाग ‘गान’ है जिसमें ऋचाओं को गाए जाने का उल्लेख है। आर्चिक ग्रंथों की तुलना आज के समय में ऐसे ग्रंथों से की जा सकती है जो कि विभिन्न रागों की केवल बंदिशों का संग्रह हो जबकि गान ग्रंथ वे कहे जा सकते हैं जिनमें उन बंदिशों की स्वरलिपि भी दी गई हो।

अर्थात् स्वर से ही साम की गति निर्दिष्ट होती है। ‘साम’ शब्द का मूलार्थ विशिष्ट स्वरों का सन्निवेश ही है। सामवेद के दो मुख्य भाग हैं — ‘आर्चिक’ तथा ‘गान’।





आर्चिक की ऋचाएँ ही गान का आधार अथवा जन्मस्थान हैं। आर्चिक दो भागों में विभक्त हैं— पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में 585 ऋचाएँ हैं तथा उत्तरार्चिक में ऋचाओं की संख्या 1225 है। गान भी चार प्रकार के थे— ग्रामगेय गान, अण्यगेय गान, ऊह गान एवं उह्य गान।

ग्रामगेय गान को प्रकृति गान या ग्रामगान भी कहा जाता था। गाँवों और कस्बों आदि में यह साधारण जन द्वारा गाए जाते थे। क्या आप समझ पा रहे हैं ये वर्तमान युग के लोकगीत हैं!

आइए, समझें कि वेदों के समय सात स्वरों का विकास किस तरह से हुआ। यज्ञ के समय ऋचाओं का गान जब एक स्वर से किया जाता था तो उसे 'आर्चिक' कहा जाता था, जैसे— सा सा सा। दो स्वरों से किया गया गान 'गाथिक' तथा तीन स्वरों से युक्त गान को 'सामिक' संज्ञा दी जाती थी। अधिकांशतः सामगान में तीन या कभी-कभी चार स्वरों का प्रयोग होता था। एक, दो या तीन स्वरों के गान को ऋक, गाथा या साम कहा गया। सामगान के तीन स्वर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित हैं। पाणिनी के व्याकरण के अनुसार वे संगीतज्ञ भी थे।

ऋग्वेद की ऋचाओं को उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के अनुसार सस्वर पाठ करने से मधुरता का आभास होता है। इन तीनों स्वरों की स्वरलिपि भी ऋग्वेद तथा सामवेद में दी गई है। उदात्त के लिए ऋग्वेद में कोई चिह्न नहीं, अनुदात्त के लिए नीचे पड़ी रेखा तथा स्वरित के लिए ऊपर खड़ी रेखा दर्शाई जाती है। सामवेद में इन्हें चिह्नित करने के लिए क्रमशः उदात्त, स्वरित एवं अनुदात्त को 1, 2 तथा 3 संख्या द्वारा स्वरांकन किया जाता है। कालांतर में तीन स्वर युक्त साम के पश्चात एक अन्य स्वर और जुड़ा जिसे 'स्वरांतर' नाम दिया गया। उसी समय से स्वरलिपि लिखने की प्रथा आरंभ हो गई थी।

नारदीय शिक्षा में साम के स्वरों के नाम इस प्रकार दिए गए हैं—

प्रथमश्च, द्वितीयश्च तृतीयोऽय चतुर्थकः।

मन्द्रः क्रुष्टो ह्यातिस्वार एतान्कुर्वन्ति सामगाः।

(ना. शि. 1.1.12 मैसूर संस्कृत)

अर्थात् 'प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ' ये चार स्वरनाम संख्यात्मक हैं। तत्पश्चात् मन्द्र, अतिस्वार्य तथा उसके बाद क्रुष्ट— ये तीन स्वर और जुड़ गए जिससे स्वर संख्या सात परिपूर्ण हुई। क्रुष्ट आदि स्वर ही 'यम' कहलाते थे। क्रुष्ट शब्द क्रुश धातु से बना है जिसका अर्थ है जोर से गाना या ठहरावा। अतः सामग्राम का संपूर्ण सप्तक इस प्रकार बना— क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार्य। यह अवरोही क्रम में था जिसका पहला यम (स्वर) सबसे अधिक ऊँचा 'क्रुष्ट' था। इस समूह को 'ग्राम' कहा जाने लगा।

सामगान को पाँच या सात खंडों में भी बाँटा गया जिन्हें पंच भक्ति संज्ञा दी गई; तथा उनमें से प्रत्येक खंड के गाने का दायित्व विशिष्ट गायक वर्ग को सौंपा जाता था।

रामायण

भारतीय परंपरानुसार *रामायण* की रचना त्रेता युग में हुई। पाश्चात्य विद्वान इसका समय ईसा से लगभग 500 वर्ष पूर्व मानते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने *रामायण* की रचना संस्कृत भाषा में की जिसमें 24,000 श्लोक हैं। *रामायण* में पाठ्य (काव्य छन्द युक्त) तथा गेय (तीनों प्रमाणों यथा द्रुत, मध्य, विलम्बित; सप्त ग्राम जाति, वीणा के साथ लय युक्त गायन) का अत्यंत मंजुल समन्वय है। ग्राम को क्रमशः जाति कहा जाने लगा। यही जातियाँ आगे चलकर रागों के निर्माण का आधार बनीं। *रामायण* काल में वैदिक संगीत के साथ गांधर्व संगीत का भी प्रयोग होता था। संगीतशास्त्र एवं परंपरागत लोक संगीत (लौकिक) ही ‘गांधर्व’ कहलाता था। लव और कुश ‘गांधर्व’ तत्व के ज्ञाता थे। महर्षि वाल्मीकि द्वारा शिक्षित लव-कुश ने मार्गी संगीत अर्थात् शास्त्रीय संगीत के नियमानुसार भी रामचरित का गायन किया। सूत, मागध आदि व्यवसायी गायक वर्ग वीरगाथाएँ एवं राजा की स्तुति द्वारा जन-मन रंजन और उत्साहवर्धन का कार्य करते थे। धार्मिक उत्सव एवं लौकिक अवसरों पर गायन, वादन तथा नृत्य का आयोजन किया जाता था। सभी प्रकार के वाद्यों की सामान्य संज्ञा ‘आतोद्य’ थी। राज-अतिथियों के आगमन एवं विदाई के समय गायन, वादन व नृत्य किया जाता था। युद्ध के समय सेनाओं के उत्साहवर्धन हेतु दुंदुभि, भूमि दुंदुभि, भेरी, पटह, पणव, शंख आदि का प्रयोग किया जाता था। विपंची वीणा के प्रयोग का उल्लेख सुंदर कांड में पाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण के समय में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान था।

महाभारत

द्वापर युग में भारत (भरत की संतान) के महासंग्राम का वृहद आख्यान— *महाभारत ग्रंथ* के रूप में कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा लिखा गया। यद्यपि *महाभारत* संगीत का ग्रंथ नहीं तथापि इसमें तत्कालीन संगीत की विशेष बातों की चर्चा मिलती है। उस काल में साम संगीत के साथ-साथ गांधर्व गान भी प्रचार में था। यज्ञ, जन्म-मृत्यु तथा धार्मिक उत्सवों पर सामगान किया जाता था। ‘संगीत’ शब्द के स्थान पर ‘गांधर्व’ शब्द का प्रयोग होता था। अतः संगीतशास्त्र को ‘गांधर्व शास्त्रम्’ कहा गया। गांधर्व को गाने वाले अतिवाहु, हूहू, हाहा तथा तुंबरू आदि गांधर्वों में श्रेष्ठ थे। ‘गांधर्व’, गायन में तो अद्वितीय थे ही, उसके साथ-साथ वादन और नृत्य में भी पारंगत थे। समापर्व के सातवें अध्याय के 24वें श्लोक में अप्सराओं व गंधर्वों का उल्लेख आया है। गायन, वादन व नृत्य को सुसंस्कृत जन समुदाय में भी आदर प्राप्त था। राजाओं, गंधर्वों व किन्नरों के निवास स्थान सदा गीत एवं वाद्यों के निनाद से गुञ्जायमान रहते थे। युद्ध के समय भी रणवाद्यों का प्रयोग किया जाता था। महापुरुषों के आदर सम्मान के लिए विशेष रूप से गीत, नृत्य आयोजित किए जाते थे। यज्ञ के समय सामगान के अतिरिक्त स्तुति, स्तोम और गाथा गान का उल्लेख प्राप्त होता है। बहुत सारे अवसरों पर संगीत प्रयोग में लाया जाता था,





जैसे— राजसूय यज्ञ के समय ब्राह्मणों का मनोरंजन, संगीत नृत्यादि से किया गया था। अश्वमेधिक यज्ञ के समय भी ब्राह्मणों का मनोरंजन गायन में पारंगत नारद, तुंबरू, विश्ववसु, चित्रसेन आदि गंधर्वों ने किया। राजा आदि महान व्यक्तियों के सवरे जागने व रात्रि शयन के समय मंगल गान या वादन किया जाता था। अर्जुन द्वारा लक्ष्यभेद करने पर सूत व मागधों द्वारा स्तुतिगान किया गया।

सभापर्व के चौथे सर्ग के 38, 39 श्लोकों में यह वर्णन है कि जब सभा के निर्माण के पश्चात युधिष्ठिर ने उसमें प्रवेश किया तो गान वादन द्वारा उत्सव मनाया गया। उस समय तत्, अवनद्ध, सुषिर, घन आदि सभी प्रकार के वाद्यों का प्रयोग किया

जाता था। श्री कृष्ण के जागने पर गायकों ने मंगलगान किया, पाणिध्वनिकों (हाथ से वाद्य बजाने वालों) ने तथा वादकों ने मृदंग, शंख, पणव तथा वेणु का उल्लासयुक्त वादन किया।

अर्जुन गायन, वादन तथा नृत्य तीनों के ज्ञाता थे। उन्होंने इंद्र के आदेशानुसार चित्रसेन गंधर्व से संगीत सीखा था। राजा विराट की कन्या उत्तरा को इन सबकी शिक्षा अर्जुन ने प्रदान की।

महाभारत में वीणा तथा वल्लकी का स्वतंत्र रूप से वर्णन है। उस काल में चारों वर्गों में प्रयुक्त वाद्य, जैसे— भेरी, तुरही, वारिज (शंख), पणव, मुरज, दुंदुभि, आनक, मृदंग, वीणा, वेणु, आडंबर, झर-झरी, कांसे से बने झांझ, मंजीरा आदि का प्रचुर प्रयोग किया जाता था। युद्ध के समय सैनिकों का उत्साहवर्धन करने हेतु चमड़े से मढ़ा हुआ भारी वाद्य 'आनक' तथा तुरही जैसे गोमुख वाद्य द्वारा निर्घोष किया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत काल में संगीत सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अंग था।

नाट्यशास्त्र

नाट्यशास्त्र की रचना ईसा से दो शताब्दी पूर्व से चौथी शताब्दी पश्चात तक के मध्य मानी जाती है। यह भरतमुनि कृत भारतीय साहित्य, काव्य, नृत्य, नाट्य, संगीत एवं अन्य कलाओं का बृहद विश्वकोश है। महर्षि भरत के वंशज दत्तिल, कोहल व शांडिल्य का इस ग्रंथ के संकलन एवं परंपरा निर्वहन में विशेष योगदान है। गुरु-शिष्य परंपरा की अनूठी कहानी यहीं से शुरू होती है। यद्यपि यह ग्रंथ नाट्य के संदर्भ में लिखा गया है, लेकिन 36 अध्यायों में से 28वें से 33वें अध्याय तक इसमें संगीत विषयक सामग्री है।

वाद्यों को सर्वप्रथम भरत ने ही चार वर्गों में विभाजित किया— तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर। संपूर्ण संसार के सभी वाद्य इन्हीं चार वर्गों के अंतर्गत आते हैं। भरत के अनुसार इन वाद्यों के एक



चित्र 1.1 – कुरुक्षेत्र की लड़ाई



चित्र 1.2 — नाट्यशास्त्र ने प्राचीन और मध्यकालीन भारत की अन्य कलाओं को भी प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, बादामी गुफा मंदिरों (छठी-सातवीं शताब्दी) में नृत्य करती यह शिव की मूर्ति, इसके नृत्य और मुद्रा को दर्शाती है।

साथ प्रयोग से 'कुतप' बनते हैं जो कि 'वाद्यवृन्द' का परिचायक है। तत् वर्ग में भरत की मुख्य वीणा मत्तकोकिला थी जिसे, वैणिक बजाता था। विपंची वीणा वादक 'वैपंचिक' और बाँसुरी बजाने वाला 'वैणिक' कहलाता था। अवनद्ध कुतप के अंतर्गत मृदंग वादक मार्दंगिक, पणव वादक पाणविक तथा दर्दुर वादक को दार्दरिक कहा जाता था। ग्रंथ के 28वें अध्याय में स्वर, श्रुति, ग्राम, मूच्छर्ना, जाति, वाद्यों के भेद आदि का वर्णन किया गया है। भरत काल में षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम का प्रचलन था। षड्ज ग्राम में सप्त जातियों षाड्जी, आर्षभी, धैवत, नैषादी, षड्जोदीच्यवती, षड्जकैशिकी तथा षड्जमध्यमा एवं मध्यम ग्राम में एकादश जातियों यथा— गांधारी, मध्यमा, पंचमी, रक्तगांधारी, गांधारोदीच्यवा, गांधारपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, आंध्री, नन्दयंती, कार्मारवी और कैशिकी का अंतर्भाव है।

नाट्यशास्त्र में जाति के दशविध लक्षणों का निरूपण किया गया है— ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व एवं औडवत्व। नाट्यशास्त्र के अनुसार वर्ण एवं अलंकारों का प्रयोग

पाठ्य एवं गेय दोनों में महत्वपूर्ण है। 'वर्ण' गानक्रिया का द्योतक है जो कि भरतानुसार चार प्रकार के हैं— आरोही, अवरोही, स्थायी तथा संचारी। इन्हीं चतुर्दिक वर्णों पर अलंकारों का निर्माण आधारित किया जाता है।

ग्रहाशौ तारमन्द्रौ च न्यासोपन्यास एवं च।
अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडवितें तथा॥

(28, 70)





बृहदेशी

मतंग मुनि द्वारा रचित बृहदेशी ग्रंथ का रचना काल सातवीं-आठवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। यह ग्रंथ खण्डित रूप से ही प्राप्त है। इसमें आठ अध्याय हैं जिनमें से रागाध्याय और प्रबन्धाध्याय ही प्राप्त हैं। मतंग ने मार्गी एवं देशी संगीत का उल्लेख किया है। मार्गी संगीत कड़े नियमों द्वारा बंधा था और देशी संगीत जन-मन रंजक था। मतंग ने जाति गायन के दस लक्षणों को ही स्वीकारा है। बृहदेशी में 'गीति' का तात्पर्य है 'स्वरो का विशेष चलन'। सात स्वराश्रित गीतियों के नाम इस प्रकार दिए गए हैं— शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, रागगीति, साधारणी, भाषा गीति तथा विभाषा गीति। शुद्धा गीति में स्वरो का चलन अत्यंत सरल एवं माधुर्य युक्त होता था। भिन्ना गीति में वक्र प्रयोग गौड़ी गीति में गमकयुक्त, राग गीति में चार वर्णों अर्थात् स्थायी, आरोही, अवरोही तथा संचारी में स्वरो का चलन और भाषा व विभाषा गीतियों के अंतर्गत विभिन्न भाषाओं व विभाषाओं का प्रयोग मान्य होता था। साधारणी गीति में उपरोक्त चारों गीतियों का मिश्रण होता था। मतंग कृत बृहदेशी में 'मूर्च्छना' सप्त स्वर से विस्तृत कर द्वादश स्वर युक्त उल्लेख की गई है। द्वादश स्वरो में सात स्वर एक सप्तक के तथा पाँच अन्य सप्तकों के स्वर सम्मिलित किए गए हैं यथा— नि सा रे ग म प ध नि सं रें गं मं। राग को परिभाषित करते हुए बृहदेशी में कहा गया है कि वह विशेष ध्वनि जो स्वरो एवं वर्णों से विभूषित हो तथा श्रोताओं के चित्त का रज्जन करे, 'राग' कहलाती है। यहाँ वर्ण से तात्पर्य है 'गायन की प्रत्यक्ष क्रिया'।

1. भारतीय संस्कृति में वेदों की संख्या कितनी है?
2. संगीत की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ किसे माना जाता है? उस ग्रंथ की विशेषताएँ लिखिए।
3. नाट्यशास्त्र के लेखक कौन है? नाट्यशास्त्र में संगीत का वर्णन किन अध्यायों में है?
4. बृहदेशी के लेखक कौन हैं? इस ग्रंथ के बारे में लिखिए।
5. महाभारत काल में संगीत शब्द के स्थान पर किस शब्द का प्रयोग किया जाता था?



2. चौदहवीं शताब्दी से वर्तमान काल (मध्य युग एवं आधुनिक युग)

संगीत रत्नाकर

शार्ङ्गदेव कृत ग्रंथ संगीत रत्नाकर का रचना काल 1210 ई. से 1247 ई. के मध्य माना गया है। यह उत्तर भारतीय संगीत एवं दक्षिणी संगीत दोनों का आधार ग्रंथ है। संगीत रत्नाकर की अनेक

‘गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।’

टीकाओं में संस्कृत की सिंह भूपाल कृत टीका एवं कल्लिनाथ कृत टीका अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। संगीत रत्नाकर के आरंभ में ही संगीत की परिभाषा दी गई है— अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य तीनों को संगीत कहा जाता है। इस ग्रंथ में इन तीनों को ही संगीत में सम्मिलित किया गया है। इस ग्रंथ में सात अध्याय हैं, अतः कुछ लोग इसे ‘सप्ताध्यायी’ के नाम से भी संबोधित करते हैं। सात अध्यायों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं— स्वरगताध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबंधाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय तथा नर्तनाध्याय।

स्वरमेलकलानिधि

स्वरमेलकलानिधि रामामात्य द्वारा 1550 ई. में रचित कर्नाटक संगीत पद्धति का अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पाँच प्रकरण हैं। प्रथम ‘उपोदघात प्रकरण’, द्वितीय ‘स्वर प्रकरण’, तृतीय ‘वीणा प्रकरण’, चतुर्थ ‘मेल प्रकरण’, पंचम ‘राग प्रकरण’ में नाद तीन प्रकार का है— मन्द्र, मध्य तथा तार जो क्रमशः हृदय, कंठ तथा मस्तक से उद्भूत है। रामामात्य ने नाद के पाँच प्रकार माने हैं। स्वरमेलकलानिधि वर्तमान समय के लिए अपने पूर्ववर्ती ग्रंथों की अपेक्षा एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रंथ है।

राग तरंगिणी

राग तरंगिणी के रचयिता पंडित लोचन हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि तरंगिणी का रचना काल चौदहवीं शताब्दी के आस-पास है जबकि अन्य मत के अनुसार इस ग्रंथ की रचना सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास हुई। थाट राग वर्गीकरण सर्वप्रथम राग तरंगिणी ग्रंथ में दृष्टिगोचर होता है। इससे पहले राग-रागिणी पद्धति प्रचार में थी। सर्वप्रथम इस ग्रंथ में निबद्ध एवं अनिबद्ध गान का भी वर्णन है। लोचन के समय तक षड्ज ग्राम संगीत का आधार हो चुका था। राग तरंगिणी का शुद्ध थाट, आधुनिक हिंदुस्तानी काफी थाट के समान है। पंडित लोचन ने 12 थाट बताए हैं जिनमें 75 अन्य रागों का वर्गीकरण किया गया है। स्वरों एवं रागों के नाम अधिकांशतः उत्तरी हैं जो कि आज भी हिंदुस्तानी संगीत में प्रचार में हैं। इस कारण भी इस ग्रंथ को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इसमें रागों का समय भी वर्णित किया गया है।

चतुर्दण्डिप्रकाशिका

व्यंकटमुखी रचित ग्रंथ चतुर्दण्डिप्रकाशिका का रचना काल 1640–1650 ई. के लगभग माना जाता है। चतुर्दण्डि का तात्पर्य संगीत के चार तत्वों से है— गीत, ठाय, आलप्ति तथा प्रबंध।





यह दक्षिणी संगीत पद्धति का आधार ग्रंथ माना जाता है। दक्षिण में 12 स्वर-पद्धति अंतिम रूप से उन्होंने ही निश्चित की थी। ग्रंथकार ने प्रत्येक स्वर अपनी अंतिम श्रुति पर स्थित माना है। इन्होंने अपना शुद्ध स्वर-सप्तक 'मुखारी' माना है। 12 स्वरों में सात शुद्ध के अतिरिक्त पाँच विकृत स्वर साधारण गंधार, अंतर गंधार, वराली मध्यम, कैशिक निषाद तथा काकली निषाद बताए हैं। व्यंकटमुखी 72 मेलकर्ताओं के आविष्कारक हैं। पंडित भातखंडे द्वारा इन 72 मेलों में से केवल 10 मेल ही उत्तर भारतीय रागों को वर्गीकृत करने हेतु चयनित किए गए हैं।



चित्र 1.3 — मिज़ोरम के लोक वाद्य प्रस्तुत करते छात्र

संगीत पारिजात

अहोबल कृत संगीत पारिजात की रचना सत्रहवीं शताब्दी के मध्य लगभग 1650 ई. में हुई। हिंदुस्तानी संगीत पद्धति का यह एक प्रामाणिक ग्रंथ है। संस्कृत में लिखे इस ग्रंथ में पाँच प्रकरण (अध्याय) हैं—

- | | |
|-------------------------|---------------------------|
| (1) स्वर प्रकरण | (2) ग्राममूर्च्छना प्रकरण |
| (3) स्वर विस्तार प्रकरण | (4) गमक प्रकरण |
| (5) समय प्रकरण | |

अहोबल भी पूर्व ग्रंथकारों की तरह एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ मानते हैं। 22 श्रुतियों पर सात स्वरों की स्थापना करते हुए उन्होंने प्रत्येक स्वर को अपनी अंतिम श्रुति पर 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 के अनुसार ही स्थापित किया। संगीत पारिजात का शुद्ध स्वरसप्तक, आधुनिक समय के हिंदुस्तानी 'काफी' मेल के सदृश है। पंडित भावभट्ट ने संगीत विषयक तीन ग्रंथ— अनूप विलास, अनूप संगीत रत्नाकर एवं संगीत अनूपांकुश सन 1674 से 1709 के मध्य में रचे।

अनूप विलास — इस ग्रंथ में नाद उत्पत्ति, 22 श्रुतियों पर स्वर-स्थापना, श्रुतियों के दो प्रकार गात्रक तथा पंत्रज, शुद्ध स्वरों के चित्र तथा देवता, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, वर्ण, अलंकार शुद्ध तान, कूट तान आदि का वर्णन संगीत रत्नाकर और संगीत पारिजात के समान किया है। रागाध्याय में संगीत रत्नाकर में वर्णित 234 रागों के नाम तथा 70 रागों का परिचय भी दिया गया है जिसमें अड़ाना, आसावरी, कामोद तथा कल्याण आदि राग भी सम्मिलित हैं।



चित्र 1.4 — संगीत से मिली खुशी — श्वेता और पलक

अनूप संगीत रत्नाकर — इसमें पुनः श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण, अलंकार आदि का वर्णन संगीत रत्नाकर के समान ही किया गया है। भावभट्ट ने इसमें ध्रुपद की परिभाषा एवं बंदिशों का उल्लेख किया है, परंतु उनकी स्वरलिपि नहीं दी है।

अनूपकुश — इस लघु ग्रंथ में श्रुति की परिभाषा देने के पश्चात् राग अध्याय में राग वर्गीकरण संगीत दर्पण के अनुसार ही दिया गया है परंतु रागों के वर्णन में संगीत पारिजात, राग-मंजरी आदि के मतों का ही उल्लेख किया है।

राधा गोविंद संगीत सार

राधा गोविंद संगीत सार ग्रंथ की रचना जयपुर नरेश सवाई प्रताप सिंह के राज्यकाल में सन 1779-1804 में चार विद्वान् संगीत मर्मज्ञ कवियों— श्री कृष्णभट्ट तैलंग, चुनीलाल भट्ट, इंदोरिया मिश्रा तथा रामराय द्वारा हुई। यह ग्रंथ सात अध्यायों में विभक्त है— स्वर, वाद्य, नृत्य, प्रकीर्ण, प्रबंध, ताल तथा राग।

स्वराध्याय में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, अलंकार का विस्तृत विवेचन तथा स्वर-ध्यान दिए गए हैं। रागाध्याय में ग्रंथकार ने 208 रागों का परिचय देते हुए रागों की शुद्ध, छायालंग और संकीर्ण जातियों का वर्णन किया है। तालाध्याय में ताल के दश प्राण, मृदंगम के बोलों में गुरु, लघु, प्लुत संज्ञा, पाँच प्रकार के मार्ग ताल, 208 देशी ताल तथा 14 गीतकों का वर्णन है। प्रबंधाध्याय में प्रबंध के छह अंगों में 'तन ना रा नि री' शब्दों का प्रयोग ध्रुपद के नोम-तोम एवं तराना के बोलों के सदृश हैं। वाद्याध्याय में चार प्रकार के वाद्य, तत्, अवनद्ध, घन और सुषिर का वर्णन है। तत् वाद्यों में वीणा के आठ प्रकार बताए गए हैं। इस ग्रंथ में तंबूरे के दो प्रकार निबद्ध तथा अनिबद्ध बताए गए हैं। सुषिर वाद्यों के अंतर्गत कई प्रकार के लोकवाद्यों का वर्णन है जिसमें 'सुनारि' नामक वाद्य आजकल की शहनाई से मिलता-जुलता था। ग्रंथ के अध्ययन से एक रोचक तथ्य यह भी स्पष्ट हुआ कि उस समय भी उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय संगीत में कुछ एकसमान राग-ताल एवं वाद्यों का प्रचलन था।



1. संगीत रत्नाकर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पाए गए अध्यायों के नाम बताएँ?
2. व्यंकटमुखी ने कितने मेल बताएँ हैं?
3. संगीत पारिजात का काल बताएँ?
4. चतुर्दण्डप्रकाशिका का तात्पर्य किससे है?
5. राग तरंगिणी में आधुनिक समय के संगीत में प्रयोग किए जाने वाले किन शास्त्रों का वर्णन है?

आधुनिक युग

संगीत का आधुनिक युग सन 1801 से वर्तमान समय तक माना जाता है। अभी तक हमने देखा कि प्राचीन समय में भरत द्वारा जाति वर्गीकरण, मतंगमुनी द्वारा ग्रामराग वर्गीकरण तथा पंडित





शार्ङ्गदेव द्वारा दशविध राग वर्गीकरण, ग्रामराग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अंतर्भाषा, रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग का उल्लेख मिलता है।

मध्यकाल में राग-रागिनी पद्धति तथा मेल राग पद्धति प्रचलन में आई। उत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण भारत में भी राग-रागिनी पद्धति प्रचलित हुई। कई ग्रंथों में राग-रागिनी तथा मेल राग वर्गीकरण एक साथ दिए गए हैं यथा पंडित पुण्डरीक विट्ठल द्वारा रचित *सद्राग चंद्रोदय*, *रागमाला* तथा *राग मंजरी*। शुभंकर कृत *संगीत दामोदर* तथा दामोदर पंडित कृत *संगीत दर्पण* ग्रंथ में *राग-रागिनी* वर्गीकरण दिया गया है। *संगीत दर्पण* में *राग रागिनी* वर्गीकरण के चार मत दिए गए हैं— शिवमत, हनुमंत, कृष्ण मत एवं भरत मत। इन चारों मतों में 6-6 राग और क्रमशः 36, 30, 36 तथा 30 रागिनियाँ हैं।

आधुनिक काल भी सांगीतिक विकास की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। आधुनिक काल में अनेक ग्रंथ भी लिखे गए, स्वरलिपि का विकास हुआ, राग वर्गीकरण की रागांग पद्धति की रचना हुई, अनेक घराने विकसित हुए और संगीत शिक्षण संस्थानों के माध्यम से संगीत शिक्षा तथा संगीत के प्रचार-प्रसार का क्षेत्र भी व्यापक हो गया। आधुनिक युग के कुछ प्रमुख ग्रंथों से संबंधित जानकारी इस प्रकार है—

नगमाते आसफ़ी— सन 1813 में मोहम्मद रज़ा ने उस समय के राग-रागिनी और पुत्र रागों को असंगत ठहराया तथा भरत मत आदि चारों मतों को अनुपयोगी कहते हुए छह राग और 36 रागिनियों की पद्धति दर्शाई। छह रागों के नाम इस प्रकार हैं— भैरव, मालकोंस, हिंडोल, श्री, मेघ, नट सर्वप्रथम मोहम्मद रज़ा ने ही थाट काफ़ी के स्थान पर शुद्ध सप्तक के रूप में बिलावत को प्रतिष्ठित किया।

संगीत राग कल्पद्रुम— कृष्णानंद व्यास द्वारा यह ग्रंथ 1842 ई. में लिखा गया। इसमें हजारों की संख्या में ध्रुपद, ख्याल तथा अन्य गीत संकलित हैं, परंतु उनमें से किसी की भी स्वरलिपि नहीं दी गई।

मआदुनुलमुसीकी— हकीम मोहम्मद करम इमाम द्वारा यह ग्रंथ 1854 ई. में लिखा गया। इस ग्रंथ में उस समय के संगीत तथा प्रचलित घरानों के विषय में सविस्तार लिखा गया है। इस ग्रंथ में उस काल के समस्त कलाकारों तथा उनके आश्रयदाता नरेशों के विषय में भी लिखा गया है।

अभिनव राग मंजरी, श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्— पंडित भातखंडे द्वारा बीसवीं शताब्दी के आरंभ में इन ग्रंथों की रचना की गई। यह दोनों ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे गए हैं। इन ग्रंथों के माध्यम से प्राचीन संगीत की विशेषताओं के साथ-साथ उसमें फैली हुई भ्रान्तियों पर भी प्रकाश



चित्र 1.5 — श्रीमती गंगू बाई हंगल — किराना घराना की महान गायिका

डाला गया। आधुनिक युग में अनेक अन्य ग्रंथ भी लिखे गए जिनमें पंडित भातखंडे द्वारा क्रमिक पुस्तक मालिका के छह भाग, संगीत शास्त्र के चार भाग, *ए शार्ट हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ द म्यूजिक ऑफ अपर इंडिया* आदि पुस्तकें सम्मिलित हैं।

भातखंडे जी ने इन पुस्तकों में की गई चर्चा के अनुसार 22 श्रुतियों पर चात स्वरों की स्थापना करते हुए विशिष्ट स्वर के लिए निर्धारित श्रुतियों में से प्रथम श्रुति पर स्वर को स्थापित किया जबकि पूर्व समय में स्वर को अंतिम श्रुति पर स्थापित किया जाता था, जिसके कारण सप्तक में गंधार व निषाद कोमल सुनाई देते थे और शुद्ध थाट (scale) काफी थाट के समान हो जाता था। भातखंडे जी ने स्वर का श्रुति स्थान जब बदला तो गंधार व निषाद अपने शुद्ध स्वर रूप में सुनाई देने लगा जिसके कारण संगीत का शुद्ध थाट बिलावल थाट माना जाने लगा।

इसके अतिरिक्त पंडित भातखंडे ने 200 रागों को 10 थाटों बिलावल, कल्याण, भैरव, काफी, आसावरी, मारवा, खमाज, पूर्वी, तोड़ी, भैरवी में वर्गीकृत किया। पंडित भातखंडे ने नवीन स्वरलिपि भी दी। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में नई स्वरलिपि का निर्माण किया और अनेक पुस्तकें लिखीं— *संगीत बाल प्रकाश*, *बाल बोध*, *महिला संगीत*, *व्यायाम के साथ संगीत*, *टप्पा गायन*, *भक्त प्रेम लहरी* आदि। आधुनिक युग में रागों के चलन के आधार पर विकसित रागांग पद्धति भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। बंबई के मोरेश्वर खरे ने सभी रागों का वर्गीकरण 30 रागांगों के अंतर्गत कर दिया। इन्होंने 30 स्वर समुदाय चुने और उन्हें राग के प्रमुख अंग अर्थात् 'रागांग' नाम से संबोधित किया। मुख्य रागांग थे— भैरव, कल्याण, बिलावल, खमाज, काफी, पूर्वी, तोड़ी, आसावरी, भैरवी, सारंग, भीमपलासी, मल्हार, कान्हड़ा, गौरी, नट आदि। इस प्रकार हमने देखा कि भारतवर्ष में वैदिक काल से वर्तमान समय तक संगीत का विकास एवं प्रचार-प्रसार सतत रूप से प्रवाहमान है।



चित्र 1.6 — सुषिर वाद्य बाँसुरी के साथ तबला संगत

घरानों का उद्भव एवं विकास

भारतीय शास्त्रीय संगीत में घराना, गायकी की विशेष पद्धति से संबंध रखता है। इस शब्द का 'मूल' संस्कृत के 'गृह' शब्द अथवा हिंदी के 'घर' शब्द में है। विभिन्न घरानों के कलाकार एक ही राग का प्रस्तुतीकरण शास्त्रोक्त नियमों की सीमाओं में रखते हुए भिन्न प्रकार से करते हैं। राग-गायन के आलाप, बोल आलाप, तान, बोलतान तथा विभिन्न सौंदर्य-तत्वों, जैसे— कण, मींड़, गमक आदि के शास्त्रानुसार तथापि स्वतंत्र प्रयोग से विशिष्ट गायकी प्रादर्भूत होती है।





जब कोई सुप्रसिद्ध कलाकार अपनी वैचित्र्यपूर्ण गायकी की छाप श्रोताओं के हृदय पर अंकित करता है और उसके शिष्यगण उस गायकी का तीन पीढ़ियों तक अनुसरण कर प्रतिष्ठित करते हैं तो वह विशेष गायकी एक 'घराना' के रूप में प्रसिद्ध हो जाती है। अधिकांशतः घराना का नामकरण स्थान विशेष या कलाकार विशेष के नाम पर किया जाता है। यातायात की असुविधा एवं अन्य प्रचार-प्रसार की सेवा ना होने के कारण घरानों की उपज हुई। मध्यकाल में जब ध्रुपद गायकी चरम पर थी तब उसमें गौड़हार, खंडार, नौहार तथा डागुर वाणी भी एक प्रकार से घरानों का ही प्रतिरूप थीं। अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में ध्रुपद गायन शैली से भी अधिक ख्याल शैली के प्रचलन ने संगीत धरातल पर पाँव जमाने प्रारंभ कर दिए। इस प्रकार ख्याल गायकी में भी कई घराने अस्तित्व में आए।

नियामत खाँ (उपनाम सदारंग) बीनकार एवं ध्रुपद गायक थे। उन्होंने सैकड़ों बंदिशों का निर्माण कर अपने शिष्यों को सिखाया और इस प्रकार यह परंपरा निर्मित हो गई। ख्याल शैली के अत्यधिक प्रचलित होने पर अनेक गायकों यथा हस्सू खाँ, हदू खाँ, नत्थन पीर बख्श, बड़े मुहम्मद खाँ आदि ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। इन सब गायकों की वंश एवं शिष्य परंपरा से कई घराने अस्तित्व में आए। उदाहरणार्थ— ग्वालियर, आगरा, किराना, पटियाला, जयपुर-अत्रौली, रामपुर-सहसवान, भिंडी बाज़ार, दिल्ली, इंदौर, मेवाती तथा बनारस आदि।



चित्र 1.7 — हारमोनियम वाद्य के साथ तबला संगत

ग्वालियर घराना— यह सभी घरानों का मूल माना जाता है। ग्वालियर घराने की ही शाखाओं के रूप आगरा घराना, आगरा से सहारनपुर और खुरजा घराना आदि अस्तित्व में आए। आगरा के ही निकट अत्रौली भी था। किराना घराने पर भी ग्वालियर का कुछ प्रभाव हुआ। ध्रुपद अंग के ख्याल, खुली जोरदार आवाज़, बलपेच की तानें, टप्पा अंग की तानें, सपाट दानेदार तानें, बोल तानों में लयकारी इसकी विशेषताएँ हैं। इस घराने के मूल पुरुष लखनऊ के उस्ताद गुलाम रसूल थे। इनके प्रपौत्र नत्थन पीर बख्श ग्वालियर आ बसे जिनके पुत्र कादिर बख्श और पीर बख्श तथा पौत्र हदू खाँ व हस्सू खाँ थे। इसी घराने में बड़े मुहम्मद खाँ, छोटे मुहम्मद खाँ, रहमत खाँ, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, शंकर राव पंडित, गणपत राव पंडित, एकनाथ पंडित, विष्णु दिगंबर पलुस्कर, राजा भैया पुंछवाले, ओंकार नाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, अनंत मनोहर जोशी, लक्ष्मण कृष्ण राव पंडित, विद्याधर व्यास, सुनंदा पटनायक, कुमार गंधर्व, नारायण राव व्यास, जितेंद्र अभिषेकी, मालिनी राजुरकर, डी.वी. पलुस्कर आदि सुप्रसिद्ध कलाकार बने।

आगरा घराना— इस घराने का प्रारंभ अकबर के दरबारी गायक हाजी सुजान खाँ से माना जाता है जो कि ध्रुपद धमार गायक थे। इनके प्रपौत्र घग्गे खुदाबख्श ने ग्वालियर के नट्यन पीर बख्श से शिक्षा ली और अपने पुत्रों— गुलाम अब्बास खाँ व कल्लन खाँ को यह ज्ञान प्रदान किया। अन्य मतानुसार अलखदास-मलूकदास द्वारा इस घराने की नींव पड़ी, परंतु उस्ताद विलायत हुसैन खाँ के अनुसार सुजान खाँ के वंशज कायम खाँ ‘श्यामरंग’ और दायम खाँ ‘सरस रंग’ नामक दो भाइयों द्वारा सन 1780 के आस-पास यह घराना स्थापित हुआ। आगरा घराने की गायकी में आवाज़ खोलकर गाने की विशेषता है। ध्रुपद गायकी का प्रभाव इस गायकी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। बंदिश प्रारंभ करने से पहले ‘नोम-तोम’ का आलाप लेते हुए अलग-अलग लय और राग का स्वरूप श्रोताओं के सम्मुख प्रदर्शित किया जाता है। बंदिश के बोलों के सहारे बहलावा ध्रुपद के ढंग से किया जाता है। बोलतानें भी स्वरों की बांट के साथ गाई जाती हैं। दमदार गमक युक्त सरल और खड़ी तानों का प्रयोग किया जाता है। बंदिश की रचना भी राग के स्वरूप के अनुसार ही की जाती है। आगरा घराने में विलंबित तीनताल में अनेक बंदिशों का प्रदर्शन दिखता है।

आगरा घराने के उल्लेखनीय गायकों के कुछ नाम हैं— फैयाज़ खाँ (प्रेमपिया), विलायत हुसैन खाँ (प्राण पिया), भास्कर बुआ बाखले, यूनस हुसैन खाँ, जगन्नाथ बुआ पुरोहित (गुणीदास), पंडित दिलीप चन्द्र बेदी, एम. आर. गौतम, मानिक वर्मा, गजाननराव जोशी, सी.आर. व्यास, जितेन्द्र अभिषेकी, श्रीकृष्ण नारायण रातनजंकर, सुमति मुटाकर, चंद्रशेखर पंत, चिन्मय लाहिड़ी, दिनकर कैकिणी और दीपाली नाग आदि।

फैयाज़ खाँ की राग जयजयवन्ती की बंदिश ‘मोरे मंदिर अब लों नहीं आए’, विलायत हुसैन खाँ की राग आनंदी में ‘अजहूँ न आए श्याम’ और राग यमन को ‘मैं वारि-वारि जाऊँ’ अति प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

कैराना (किराना) घराना— ख्याल गायकी में कैराना घराने का अपना एक विशेष स्थान है। इसका प्रारंभ सुविख्यात ध्रुपद गायक एवं बीनकार उस्ताद बंदे अली खाँ से माना जाता है जो कि गुलाम तकी के पोते थे तथा ग्वालियर घराने के उस्ताद हदू खाँ के दामाद थे। एक अन्य मतानुसार इस घराने के मूलपुरुष घोंडू और नायक मन्नू थे जो कि राजा मानसिंह के दरबार में थे। इन्हीं के वंश में बंदे अली भी थे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रहमान बख्श व काले खाँ ने इस शैली को एक नवीन रंग प्रदान किया जिसके परिणामस्वरूप यह घराना अति लोकप्रिय हो गया। अब्दुल करीम खाँ ने पाँच वर्ष की आयु से ही अपने पिता काले खाँ से सीखना प्रारंभ किया। रहमान बख्श ने भी अपने भतीजे अब्दुल करीम खाँ को संगीत कला की विद्या प्रदान की। अब्दुल वहीद खाँ ने संगीत शिक्षा अपने चाचा कोल्हापुर के सारंगी वादक उस्ताद हैदर खाँ से पाई जिन्होंने बंदे अली खाँ से अनेक बंदिशें सीखी थीं।

कैराना घराने में स्वर उच्चार भावुकतापूर्ण किया जाता है। बढ़त एक-एक स्वर को लेकर की जाती है। इस घराने में बीनकार एवं सारंगी वादक बहुत थे, अतः इनकी गायकी में जोड़ अंग





के आलाप प्रयोग किए जाते हैं। ख्याल अति विलम्बित लय में ही गाया जाता है। स्वर गोलाई में प्रयुक्त होते हैं जो कि गहरे और एक-दूसरे के आश्रय से लगाए जाते हैं जिससे एक शृंखला सी बन जाती है। मींड, सूत और मुलायम खटके का प्रयोग अधिक होता है और इस घराने की गायकी रस प्रधान होती है। रस प्रधान लय का चमत्कार नहीं दिखाया जाता, तानें सहज एवं चक्रदार ली जाती हैं।

कैराना घराने के उच्चकोटि के संगीतज्ञों के नाम इस प्रकार हैं — रामाभाऊ कुंदगोलकर उर्फ सवाई गंधर्व, सुरेश बाबू माने, हीराबाई बड़ोदेकर, गंगूबाई हंगल, सरस्वती राणे, फिरोज दस्तूर, बसवराज राजगुरू, भीमसेन जोशी, प्रभा अत्रे, संगमेश्वर गुरव, कैवल्य कुमार गुरव आदि।

एक रोचक सत्य घटना यह है कि उस्ताद अब्दुल करीम खाँ के गायन में इतनी मिठास थी कि मानव तो क्या पशु-पक्षी भी आकर्षित हो जाते थे। एक कुत्ता उनके गायन से खिंचा चला आता था। खाँ साहब ने उसे स्वर लगाना भी सिखाया। इस घटना से प्रभावित होकर ग्रामोफोन कंपनी ने अपना नामकरण 'हिज मैटर्स वॉइस' (His Master's Voice — HMV) तथा प्रतीक चिह्न भी संगीत प्रिय कुत्ता ही चित्रित किया।

पटियाला घराना— पटियाला घराने के प्रवर्तक के विषय में भी भिन्न मत प्रचलित हैं। एक मतानुसार तानरस खाँ से इस घराने की शुरुआत हुई तथा एक अन्य मत बहराम खाँ को इसका जन्मदाता मानता है। बहराम खाँ के साथ एक सारंगी वादक थे कालू खाँ, जिनके दो पुत्र थे— अली बख्श (अलिया) और फत्ते अली (फत्तू)। बहराम खाँ ने अलिया-फत्तू को ध्रुपद गायन शिक्षा दी तथा ख्याल गायन की शिक्षा इन्हें गोकी बाई और तानरस खाँ से प्राप्त हुई। तानरस खाँ ने हदू-हस्सू खाँ व अचपल की स्थाइयों का ज्ञान अलिया-फत्तू को दिया। टोंक के राजा इब्राहिम खाँ ने अलिया-फत्तू को 'जनरल' तथा 'कर्नल' की उपाधि दी जिसे पंजाबी भाषा में जनैल और करनैल कहा जाने लगा। पटियाला घराने की गायकी को अलिया-फत्तू ने बहुत प्रसिद्ध किया। अलिया निःसंतान थे। फत्ते अली के तीन पुत्र थे— अली बख्श, आशिक अली तथा काले खाँ। अली बख्श के बेटे मशहूर गायक बड़े गुलाम अली खाँ थे, जिनका गायन आज तक रसिकों के हृदय पर अंकित है।

पटियाला घराने की गायकी का अंदाज़ अन्य घरानों से अलग ही पहचान में आता है। बंदिश का कलापूर्ण प्रदर्शन, गले की तैयारी, टप्पा अंग के मुखड़े, अलंकारिक, वक्र, फिरत की तानें, गमक अंग, तराने की गायकी, ख्याल के साथ पंजाब अंग की ठुमरी गाने में प्रवीणता इसकी विशिष्टता है।

पटियाला घराने के अन्य सुप्रसिद्ध गायकों के नाम इस प्रकार हैं — मुबारक अली, बरकल अली, अमान अली, बड़े गुलाम अली के पुत्र मुनव्वर अली, ताराप्रसाद घोष, शैलेंद्र नाथ बंदोपाध्याय, प्रसून बैनर्जी, मीरा बैनर्जी, संध्या मुखर्जी, अजय चक्रवर्ती व उनकी पुत्री कौशिकी चक्रवर्ती आदि।

जयपुर-अत्रौली घराना— अलीगढ़ जिले के अत्रौली कस्बे के अनेक संगीतज्ञ परिवार थे जो ध्रुपद के साथ-साथ ख्याल गायन में भी प्रसिद्ध थे। अत्रौली घराने को अलग-अलग नामों से भी पुकारा जाता रहा यथा— उनियारा घराना, जयपुर घराना, अल्लादिया खाँ घराना। अल्लादिया खाँ साहब के पूर्वज मानतोल खाँ अत्रौली में रहते थे जिनके गायन सुन अलवर नरेश बनेसिंह अत्यंत प्रभावित हुए। अत्रौली के पश्चात खाँ साहब के पूर्वज ‘उनियारा’ गाँव में जा बसे जहाँ अल्लादिया खाँ साहब का जन्म हुआ। जयपुर के नवाब कल्लन खाँ ने अल्लादिया खाँ के पिता ख्वाजा अहमद खाँ को राज्यश्रय प्रदान किया और तब से यह जयपुर घराना कहलाने लगा। अत्रौली घराने में दो शाखाएँ थीं— मुहल्ला काजिया तथा मुहल्ला चौधरी जो कि क्रमशः लाल खाँ और हुसैन बख्श से आरंभ मानी जाती हैं। लाल खाँ के चचेरे भाई राजा जी के प्रपौत्र महबूब खाँ ने अनेक ख्याल ‘दरस पिया’ उपनाम से रचे। अल्लादिया खाँ के पुत्र मंजी खाँ एवं भूरजी खाँ ने अपने घराने का नाम प्रसिद्ध किया।

इस गायकी में विलंबित ख्याल की लय अति-विलंबित नहीं रखी जाती। अधिकांशतः विलंबित ख्याल भी तीनताल में गाया जाता है और बंदिश लयकारी में बंधी होती है। बंदिश की स्वर रचना ऐसी विशिष्ट होती है कि उसे सुनते ही घराने की गायकी स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगती है। राग विस्तार भी बंदिश की रचना अनुसार होता है। मुखड़े के बोल जिस प्रकार तय होते हैं वे सदा वैसे ही गाए जाते हैं। अन्य घरानों की भांति मुखड़े को छोटा-बड़ा या अलग-अलग अंदाज़ से प्रस्तुत नहीं किया जाता। तानों में वक्रता के साथ-साथ लय के अंश भी होते हैं अर्थात् पहले सवाई, फिर डेढ़ी, चार मात्रा और तत्पश्चात आठ इस प्रकार ली जाती हैं। इस घराने में ध्रुपद गायकी का ख्याल गायकी में बहुत सुंदर सम्मिश्रण है। ठुमरी गायन इस घराने में नहीं किया जाता।

जयपुर अत्रौली घराने के मुख्य कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं— अल्लादिया खाँ, मंजी खाँ, भूरजी खाँ, केसरबाई केरकर, मोंगूबाई कुर्डीकर, मल्लिकार्जुन मंसूर, निवृत्ति बुवा सरनाइक, ढोंढूताई कुलकर्णी, पद्मावती शालिग्राम गोखले, किशोरी अमोनकर।

रामपुर-सहसवान घराना— रामपुर और सहसवान यद्यपि दो अलग घराने हैं फिर भी दोनों का एक साथ उल्लेख किया जाता है, क्योंकि रामपुर के नवाब संगीत प्रेमी होने के नाते कई अन्य स्थानों तथा ग्वालियर, लखनऊ आदि के संगीतज्ञों को भी सहायता देते थे, अतः सहसवान घराने के भी अधिकांश संगीतज्ञ वहीं आकर बस गए थे। रामपुर तथा सहसवान दोनों ही घराने ग्वालियर की गायकी से बहुत सीमा तक प्रभावित रहे।

रामपुर घराने की शुरुआत के विषय में भी कई मत हैं। आचार्य बृहस्पति के अनुसार इसकी स्थापना नेमल खाँ ‘सदारंग’ और उनके शिष्यों द्वारा हुई। एक अन्य मतानुसार मिया तानसेन के वंशज वजीर खाँ ने इस घराने का प्रारंभ किया। एक और मत यह भी है कि ग्वालियर के हस्सू-हद्दू से प्रारंभ होकर उस्ताद कुतुबुद्दीन, साहिबुद्दौला, इनायत खाँ ने इसे अलंकृत किया और मुश्ताक हुसैन खाँ, फिदा हुसैन, हैदर खाँ, निसार हुसैन खाँ ने इस शैली को और आगे संवारा।





रामपुर-सहसवान घराने की ख्याल गायकी में आठ अंग हैं। सर्वप्रथम राग में पलटे फिर बंदिश तत्पश्चात उसी बंदिश को आकार में गाना ताकि राग का स्वरूप मस्तिष्क में अंकित हो जाए। इसके बाद बहलावे, बोल आलाप, आकार में तानें, बोल तानें, पहले छोटी तानें और फिर बहुत लंबी जो तीनों सप्तकों में गाई जाएँ। इस घराने में तराना गायन का भी अलग अंदाज़ है जिसमें तराना-रचना को विभिन्न लयकारियों में प्रस्तुत किया जाता है। टप्पा शैली का भी प्राधान्य इसमें पाया जाता है।

इस घराने के सुप्रसिद्ध कलाकारों के नाम इस प्रकार हैं— मुश्ताक हुसैन खाँ एवं उनके शिष्य इशत्याक हुसैन खाँ, गुलाम तकी, गुलाम हुसैन, शन्नो खुराना, निसार हुसैन खाँ व उनके शिष्य सरफ़राज हुसैन, रशीद, हफ़ीज़ अहमद खाँ, गुलाम मुस्तफ़ा खाँ, अनीता राय इत्यादि हैं।

भिंडी बाज़ार घराना— इस घराने के प्रवर्तक मूलतः बिजनौर निवासी थे जो कि बंबई के भिंडी बाज़ार इलाके में आ बसे। उस्ताद दिलावर खाँ के पुत्र छज्जू खाँ, नज़ीर खाँ, हाजी विलायत हुसैन और खादिम हुसैन थे। छज्जू खाँ के पुत्र फ़िदा अली खाँ और अमान अली खाँ थे तथा खादिम हुसैन के पुत्र लायक अली खाँ (उर्फ़ चुन्नू खाँ) थे। सभी सुप्रसिद्ध गायक कलाकार थे। अमान अली खाँ ने भिंडी बाज़ार घराने को ऊँचाइयों तक पहुँचाया। उन्होंने दक्षिण भारत में रहकर कर्नाटक संगीत के सौंदर्यात्मक तत्वों को उत्तरी हिंदुस्तानी संगीत में सम्मिलित कर प्रस्तुत किया। वे अपने पिता छज्जू खाँ (उपनाम 'अमर शाह') के नाम से बंदिशों की रचना करते थे। राग हंसध्वनि की रचना 'लागी लगन सखी पति संग' अति प्रसिद्ध है।

इस घराने की गायकी विलक्षण है जिसमें बढ़त करते समय प्रत्येक स्वर को दूसरे स्वर से मीड लेते हुए जोड़ते जाने का अंदाज़ और तत्पश्चात 'सम' पर पहुँचने की पद्धति (आमद) अति चित्ताकर्षक बनती है। आलाप और तानों में भी एक प्रकार का जुड़ाव-सा महसूस होता है जो कि आलाप के पश्चात सरगम को कुछ बढ़ी लय में प्रस्तुत करने से बनता है। बोलों को विविध लयों में बांधकर प्रस्तुत करना, बंदिश में बोल बनाव और तानों में बल, पेंच, खटके और गमक कर्णप्रिय लगते हैं।

भिंडी बाज़ार घराने के प्रमुख गायकों के नाम इस प्रकार हैं— अंजनी बाई मालपेकर, मियाँ जान खाँ, दिल्ली के मम्मन खाँ, इंदौर के शाहमीर खाँ, पंजाब के छेंडे खाँ, शिवकुमार शुक्ल, रमेश नादकर्णी, खानअली अहमत खाँ, पार्श्व गायिका लता मंगेशकर।

दिल्ली घराना— बारहवीं शताब्दी में दिल्ली के राजा जलालुद्दीन फ़िरोज़शाह के दरबारी गायक नसीर खाँ, फन्तू खाँ और शाहजंगी अति प्रसिद्ध थे। समय-समय पर दिल्ली में जितने भी बादशाह आए उनके दरबार में उल्लेखनीय संगीतज्ञ रहे। सन 1719 ई. में मोहम्मद शाह के दरबारी गायक नियामत खाँ (सदारंग) की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली। यदि वास्तव में देखा जाए तो कुतुब बक्ष (उपनाम तानरस खाँ) ने वर्तमान दिल्ली घराने को स्थापित किया। तानरस खाँ के गुरु मियाँ अचपल थे। दिल्ली घराने की अनेक पारंपरिक बंदिशों में तानरस खाँ एवं अचपल का नाम आता है। ख्याल शैली का प्रचार करने वाले 'सदारंग' भी यहीं के थे— अचपल के

दामाद गुलाम हुसैन खाँ, उनके दामाद संगी खाँ, संगी खाँ के पुत्र मम्मन खाँ और पौत्र चांद खाँ सभी दक्ष गायक थे।

इस घराने की गायकी में राग की सुंदरता एवं सच्चाई का विशेष ध्यान रखा जाता है। विलंबित ख्याल, तिलवाड़ा, झूमरा, सवारी, जनानी तालों में निबद्ध होते हैं। मध्य लय ख्याल आड़ा चारताल फिरदोस्त तथा द्रुत ख्याल एकताल, सूलफाक, तीनताल, रूपक इत्यादि में गाए जाते हैं। दिल्ली घराने का वैशिष्ट्य बंदिश के स्वरों की बातों से समानता, शुद्ध उच्चारण, वजन का पालन तथा लय की विविधता में अंतर्निहित है। इस घराने में तानों का वैचित्र्य विभिन्न प्रकार की तानों यथा 'सवाल जवाब की तान', 'झूले की तान', 'बहाव की तान' इत्यादि में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

ख्याल गायन के अतिरिक्त ध्रुपद, धमार, होरी, ठुमरी, गजल व कव्वाली गायन में भी दिल्ली घराना सुप्रसिद्ध है। इस घराने के उल्लेखनीय गायकों के नाम इस प्रकार हैं— सरदार खाँ, मोहम्मद अली, अली बख्श, फतह अली, इकबाल अहमद खाँ, कृष्णा बिष्ट इत्यादि। तानरस खाँ द्वारा रचित राग तोड़ी की बंदिश 'अब मोरी नैया पार करो तुम' तथा मियाँ अचपल द्वारा रचित राग यमन की 'गुरु बिन कैसे गुन गाए' जग प्रसिद्ध हैं।

इंदौर घराना— इंदौर घराने के प्रवर्तक उस्ताद अमीर खाँ माने जाते हैं। उनके पिता एवं प्रारंभिक गुरु शाहमीर खाँ हरियाणा में कलानौर के त्रिदाती थे। अमीर खाँ ने देवास के रजब अली खाँ, दिल्ली के अब्दुल वहीद खाँ तथा भिंडी बाज़ार के अमान अली खाँ से संगीत की कला सीखी और उन सबका मंथन कर अपनी एक नवीन गायकी का आविष्कार किया जिसे 'इंदौर गायकी' का नाम दिया। उन्होंने 'तराना' गायकी पर खोज की और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तराना एक सार्थक संरचना होती है। अमीर खाँ ने अमीर खुसरो के अरबी-फ़ारसी के शेर तराने में सम्मिलित किए।

इंदौर गायकी में झूमरा ताल में अति विलंबित लय का ख्याल गाया जाता है। आलाप में चैनदारी, सिलसिलेवार बढ़त, उच्चारण की शुद्धता, मुलायम खटके, गमक, लहक, मींड़, कण और सूत का प्रयोग, आलाप के पश्चात कुछ बढ़ी लय में क्लिष्ट सरगम तानें और तत्पश्चात मेरूखण्ड का प्रयोग कर जटिल तानें इस गायकी की विशेषताएँ हैं। इस गायकी में तबले की बहुत ज़्यादा लयकारी बिलकुल नहीं की जाती और बोलबांट का प्रयोग भी कम किया जाता है।

अमीर खाँ के शिष्यों में पंडित अमरनाथ, सिंह बंधु तेजपाल सिंह, सुरिन्दर सिंह, श्रीकान्त बाखरे, कंकणा बैनर्जी, ए. कानन, पूर्वी मुखर्जी, प्रद्युम्न मुखर्जी, अजीत सिंह पैटल, गजेन्द्र बक्शी, शंकर मजूमदार आदि सम्मिलित हैं।

बनारस घराना— बनारस घराने के अधिकांश संगीतज्ञों ने पहले कहीं अन्यत्र संगीत शिक्षा ली और तत्पश्चात वे बनारस आकर बस गए। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में दिलाराम मिश्र,





वृंदावन से ध्रुपद गायन शिक्षा लेकर बनारस आए। पंडित शिवदास प्रयाग जी, बख्तावर मिश्र, मनोहर मिश्र, शिवसहाय मिश्र, लक्ष्मीदास मिश्र, पशुपति सेवक मिश्र, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, अमरनाथ-पशुपति नाथ मिश्र इस घराने के संगीतज्ञ थे। आज के समय में बनारस घराने को प्रसिद्ध करने का श्रेय पंडित राजन मिश्र एवं पंडित साजन मिश्र को जाता है यद्यपि इनसे पूर्व सिद्धेश्वरी देवी व गिरिजा देवी ने भी संगीत रसिकों के हृदय पर दशकों तक राज किया।

बनारस घराने में ख्याल के साथ-साथ ध्रुपद-धमार, ठुमरी-टप्पा, कजरी-चैती तथा गज़ल भजन में विख्यात गायक रहे हैं। राग की शुद्धता बनाए रखने में विशेष ध्यान दिया जाता है। बनारस की 'बंदिशों' और 'चलन' अनोखा है। बनारस घराने के कलाकार अनंतलाल, पूर्णिमा चौधरी, रमा शंकर, सुरेन्द्र मोहन मिश्र आदि हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि प्रत्येक घराने की अपनी ही कुछ विशेषताएँ हैं। किसी घराने ने स्वर लगाव पर अधिक ध्यान दिया, किसी ने लय ताल पर, किसी ने आलाप पर तो किसी ने पेचीदा तानों पर। आज के समय में जब यूट्यूब व प्रसार भारती के विभिन्न चैनलों से सभी गायकों तक सबकी पहुँच बनी है तो सभी घरानों के गायन को आसानी से सुना जा सकता है।

1. घराना पद्धति के उद्गम एवं उद्भव पर प्रकाश डालिए।
2. किस घराने की गायकी को अष्टांग 'गायकी' कहा जाता है? विस्तार से समझाइए।
3. आगरा घराने की गायकी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. किराना घराने के कुछ मुख्य कलाकारों का नाम बताइए।
5. दिल्ली घराने का सविस्तार वर्णन कीजिए।



संगीत में शिक्षण संस्थाओं का विकास

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही गुरुकुल परंपरा के अंतर्गत सभी प्रकार की विद्याओं के शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था होती थी। रामायण में लव-कुश को मुनि वाल्मीकि के द्वारा लय, ताल, पद, स्वर, मूर्च्छना एवं प्रमाण आदि की शिक्षा दिए जाने का उल्लेख है। महाभारत काल में अर्जुन को गायन, वादन तथा नर्तन की विद्या प्राप्त होने पर 'गांधर्व विशारद' कहा गया। प्राचीन काल में गुरु के द्वारा गुरुकुल में ही संगीत शिक्षा शिष्यों को प्रदान की जाती रही। समय चक्र के आगे बढ़ने पर मध्यकाल में राजनैतिक कारणों, विदेशी आक्रमणों तथा संस्कृतियों के बाह्य प्रभाव के कारण संगीत की शिक्षण प्रणाली में भी अंतर आना स्वाभाविक था।



चित्र 1.8 — समूह गान प्रस्तुत करते स्कूली छात्र

जो संगीत केवल ईश पूजन एवं आत्मोन्नति का साधन था, वह राज-दरबारों में सिमटने लगा। उत्तर भारत में विशेष रूप से मुस्लिम संगीत का भी प्रभाव हमारे संगीत पर पड़ने लगा। संगीत को दरबारी संरक्षण प्राप्त हुआ। मध्यकाल के पश्चात जब रियासतें टूटने लगीं तो अपने निवास स्थान पर ही संगीतज्ञ अपने पुत्रों एवं खास शिष्यों को संगीत शिक्षण देने लगे जिससे सबकी अपनी-अपनी विशिष्ट गायकी उन्हीं गायकों या स्थानों के नाम से प्रसिद्ध होकर ‘घरानों’ के रूप में सामने आई।

कालांतर में अंग्रेजों के राज्य में सामान्य शिक्षा को संस्थाओं में पढ़ाए जाने की प्रणाली प्रारंभ हुई जिसमें संगीत भी एक विषय था। इस समय भारत के विभिन्न स्थानों में संगीतज्ञों ने अपने निजी संगीत विद्यालय भी स्थापित करने प्रारंभ कर दिए।

सन 1871 में कलकत्ता में क्षेत्र मोहन गोस्वामी ने संगीत विद्यालय की स्थापना की। सन 1874 में भास्कर बुआ बाखले ने पुणे में ‘भारत गायन समाज’ की स्थापना की। सन 1875 में पन्नालाल गोसाई ने ‘सितार संस्था’ प्रारंभ की। बड़ौदा नरेश सयाजी राव ने 1886 में ‘बालक गायन समाज’ की स्थापना की। सन 1887 में ‘गायन उत्तेजक मंडली’ की स्थापना हुई। सन 1901 में विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने लाहौर में ‘गांधर्व महाविद्यालय’ की स्थापना की। सन 1908 में बंबई में ‘गांधर्व महाविद्यालय’ की शाखा खोली गई। पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने ‘माधव संगीत विद्यालय’ की स्थापना की।

सन 1913 में अब्दुल करीम खाँ ने पुणे में ‘आर्य संगीत विद्यालय’ की स्थापना की। सन 1914 में ग्वालियर में कृष्णराव शंकर पंडित ने ‘गांधर्व संगीत महाविद्यालय’ खोला और उसका नाम 1917 में ‘शंकर गांधर्व संगीत महाविद्यालय’ रख दिया। अब्दुल करीम खाँ ने सन 1917 में बंबई में ‘आर्य संगीत महाविद्यालय’ खोला यद्यपि वह 1920 में बंद करना पड़ा। इन संस्थाओं का उद्देश्य संगीत का विशारद, अलंकार एवं प्रवीण की उपाधियाँ देना और प्रचार-प्रसार करना था। दूसरी ओर बीसवीं शताब्दी में संगीत की शिक्षा अन्य विषयों के समान सरकारी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी दी जाने लगी जहाँ घरानेदार गायकों को भी संगीत की शिक्षा का दायित्व सौंपा गया। इन महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के माध्यम से संगीत विषय में बी. ए., एम. ए., तथा पीएच. डी. उपाधियाँ दी जाती थीं।

आज भी देश में प्रयाग संगीत समिति; गांधर्व महाविद्यालय, पूना; भातखंडे संगीत कॉलेज, लखनऊ; स्कूल ऑफ इंडियन म्यूजिक, बड़ौदा; स्कूल ऑफ इंडियन म्यूजिक, मुंबई; तथा शंकर संगीत विद्यालय, ग्वालियर आदि कई संस्थाओं एवं लगभग सभी राज्यों के विश्वविद्यालयों में संगीत का शिक्षण विधिवत चल रहा है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से संगीत विषय में ज्ञानार्जन कर शिक्षार्थी संगीत के क्षेत्र में मंच प्रदर्शक कलाकार, संगीत शिक्षक, फिल्मों में पार्श्व गायक निर्देशक, संगीत-आलोचक, संगीत समीक्षक आदि के रूप में व्यवसाय प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही संगीत एक स्वांतः सुखाय विद्या के रूप में आत्मोन्नति का साधन भी बन सकती है।

अतः समाज की सांस्कृतिक धरोहर संगीत को सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय बनाने में संगीत विद्यालयों का योगदान अमूल्य है।



अभ्यास

नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

1. संगीत शिक्षण प्रणाली के महत्व एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. संगीत के कुछ प्रमुख संगीत शिक्षण संस्थानों की सूची बनाइए।
3. साम संगीत में स्वरों का विकास क्रम बताते हुए लौकिक स्वरों से तुलना कीजिए।
4. नाट्यशास्त्र ग्रंथ में कुल कितने अध्याय हैं और संगीत विषयक अध्याय कौन से हैं?
5. बृहद्देशी ग्रंथ में 'राग' की परिभाषा क्या है?
6. 'आतोद्य' से आप क्या समझते हैं? चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण के विषय में बताइए।
7. प्रबंध के धातु एवं अंगों के विषय में लिखिए।
8. वैदिक काल में संगीत विषय की विस्तृत जानकारी दीजिए।
9. बृहद्देशी ग्रंथ की विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।
10. रामायण कालीन वाद्यों के विषय में चर्चा कीजिए।
11. महाभारत के सांगीतिक संदर्भों की व्याख्या कीजिए।
12. नाट्यशास्त्र में वर्णित वाद्यों के विषय में लिखिए।
13. शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर के सप्त अध्यायों के विषय में बताइए।
14. संगीत पारिजात के श्रुति-स्वर विभाजन को समझाइए।
15. चतुर्दण्डिप्रकाशिका ग्रंथ के विषय में आप क्या जानते हैं?

सुमेलित कीजिए—

अ	आ
1. नाट्यशास्त्र	(क) वाल्मीकि
2. बृहद्देशी	(ख) भरत
3. चतुर्दण्डिप्रकाशिका	(ग) व्यंकटमुखी
4. संगीत रत्नाकर	(घ) अहोबल
5. संगीत पारिजात	(ङ) शार्ङ्गदेव
6. रामायण	(च) मतंग

एक शब्द में उत्तर दीजिए—

1. वेद कितने हैं?
2. गथिक में कितने स्वर होते हैं?
3. राग तरंगिणी के रचयिता कौन हैं?
4. श्रुतियाँ कितनी मानी गई हैं?
5. मेल कितने हैं?
6. संगीत पारिजात के लेखक का नाम बताइए।

सही या गलत बताइए—

1. सामवेद की रचना भरत ने की थी। (सही/गलत)
2. व्यंकटमुखी 72 मेलकर्ताओं के आविष्कारक हैं। (सही/गलत)
3. राग की सर्वप्रथम परिभाषा नान्यदेव ने दी थी। (सही/गलत)
4. सभी घरानों का मूल इंदौर घराना है। (सही/गलत)
5. श्रुतियों की संख्या 23 है। (सही/गलत)
6. साम पंच भक्तिक तथा सप्त भक्तिक थे। (सही/गलत)
7. ग्रामों की संख्या 10 थी। (सही/गलत)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

1. स्वरमेलकलानिधि ग्रंथ के रचयिता हैं।
2. ग्रंथ को नाट्यवेद अथवा पंचमवेद नाम से भी पुकारा जाता है।
3. भरत कालीन वाद्यवृंद को कहते थे।
4. संगीत रत्नाकार का रचनाकाल है।
5. भातखंडे ने 72 मेलकर्ताओं में से मेल उत्तर भारतीय राग वर्गीकरण हेतु चयनित किए।
6. हृदय कौतुक ग्रंथ के रचयिता हैं।
7. 'रावण हस्त वीणा' का वर्णन ग्रंथ में मिलता है।
8. उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ का घराना था।
9. गांधर्व संगीत महाविद्यालय की स्थापना ने की।